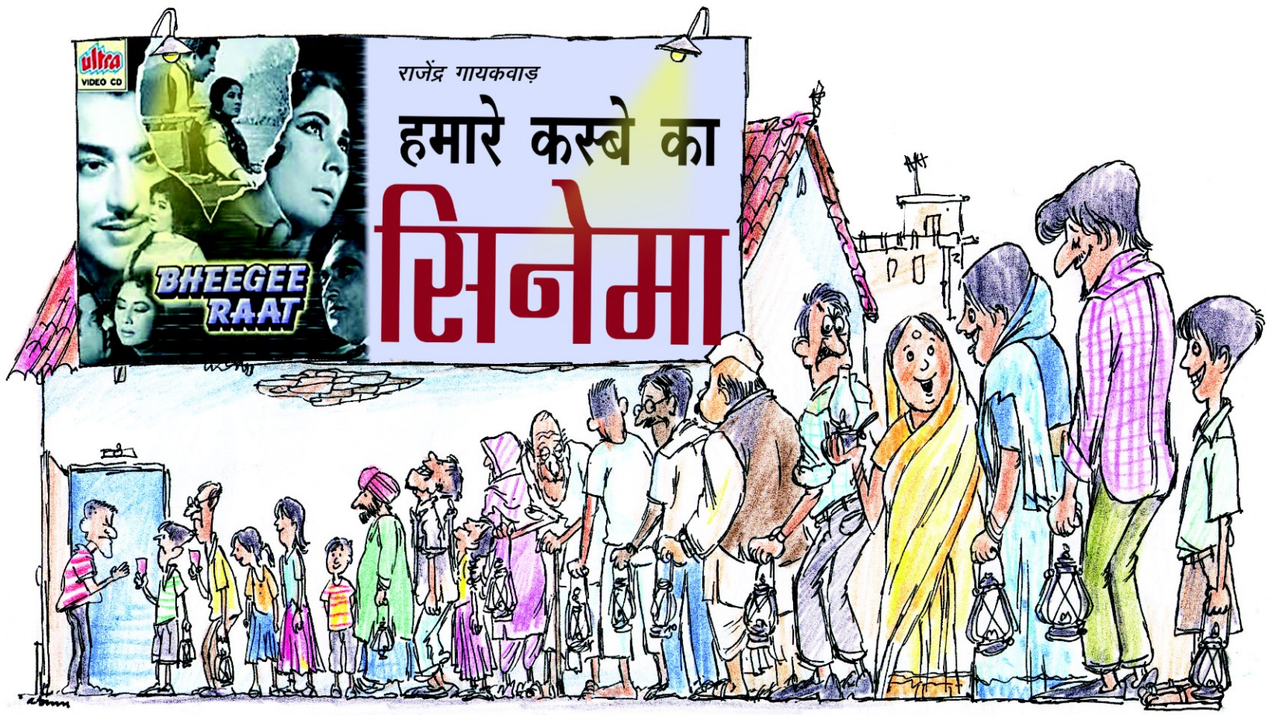

राजेंद्र गायकवाड़

हमारे कस्बे का सिनेमा

बात बहुत पुरानी है। हमारा कस्बा तब जीवन जीने की एक खूबसूरत जगह हुआ करता था। बम्बई की मिठाई वाले, गुलाब लच्छी, रेवड़ी वाले, बाइस्कोप, तमाशा दिखाने वाले नट, भालू वाले, गाने और लोकरंजन का एक रंगीन नज़ारा... कितनी सारी चीज़ें थीं!

सिनेमा देखने के लिए कस्बे में तीन टॉकीज़ थीं – गुलाब टॉकीज़, अमर और जयश्री टॉकीज़। जयश्री टॉकीज़ उस ज़माने से थी जब हमारे कस्बे में स्ट्रीट लाइट ठीक से नहीं आई थी। लोग लालटेन लेकर फिल्म देखने जाते थे। लालटेन की लौ को धीमी करके पर्दे के सामने वाले मंच पर रखा जाता। फिल्म शुरू होने से पहले गेटकीपर हरेक की लालटेन का मुआयना करता। जिस लालटेन से ज़्यादा रोशनी आ रही होती उसके मालिक से उसकी लौ धीमी करने को कहा जाता।

लम्बे इन्तज़ार के बाद घिसपिटकर फिल्में हमारी टॉकीज़ में आतीं। कोई सुपर-हिट फिल्म लगती तो उसका भव्य स्वागत होता। रिक्शे के दोनों ओर फिल्म के रंगीन पोस्टर होते। पीछे बैंडबाजे वाले फिल्म के किसी लोकप्रिय गीत की धुन बजा रहे होते। रिक्शे में बैठा आदमी माइक से फिल्म की खासियत का ऐलान कर रहा होता। मिसाल के तौर पर:

गली-गली, कूचे-कूचे में शोहरत है जिसके नाम की,
जिसने भीगी रात नहीं देखी उसकी ज़िन्दगी किस काम की।

आपके सुनहरे पर्दे पर देखें – *भीगी रात*। आपके शहर में आ गए हैं – दीवानों के दीवाने प्रदीप कुमार। अपने आँसू लेकर आईं हैं – मीनाकुमारी। अदाओं के खिलाड़ी अशोक कुमार। साथ में हैं – जयराज, श्याम सुन्दर। हँसी मज़ाक का बादशाह जॉनी वॉकर और खूबसूरत अदाकारा – चाँद उस्मानी।

रिक्शे से विज्ञापन करने वाले का नाम लूका था। लूका फिल्मी कलाकारों का नाम इतरा-इतराकर लिया करता। कॉलोनी के कुछ लोग इससे बहुत चिढ़ते। खासकर उसकी ऐसी बात पर कि "जिसने *भीगी रात* नहीं देखी उसकी ज़िन्दगी किस काम की।"

लूका से मुझे रश्क था। एक तो वह गेटकीपर था और हर फिल्म का, हर शो देखता था। दूसरा बगैर टिकट के किसी को टॉकीज़ में पाँव नहीं धरने देता था। गुण्डे-मवालियों पर वह भारी पड़ता। उसकी ठसक और रौबीलापन मुझे नागवार लगता।

उन दिनों अम्मा मुझे माया आन्टी के साथ ही पिक्चर देखने जाने देती थीं। माया आन्टी क्या खूब दबंग थीं। वे पढ़ी-लिखी नहीं थीं पर एक दूध डेयरी चलाती थीं। डर नाम का शब्द उनके शब्दकोश में था ही नहीं। खूब तगड़ी, हट्टी-कट्टी, जांबाज़ थीं वे।

गुलाब टॉकीज़ की मालकिन माया आन्टी की सहेली थीं। उनका आलू का कारोबार भी था। टॉकीज़ में एक तरफ आलू के बोरे रखे होते थे। फिल्म शुरू होते ही सेठानी माया आन्टी के पास आकर बैठ जातीं। सेठानी के आते ही हमारे मज़े हो जाते। बाहर से गरमा-गरम आलू-बड़े या समोसे भिजवाए जाते। फिर चाय आती और आन्टी के लिए मसालेदार पान भी।

आन्टी तो सेठानी से मित्रता निभाने आतीं, मज़े हमारे होते। हम ध्यान से और बारीकी से फिल्म देखते थे। कभी-कभी जब आन्टी का ध्यान फिल्म पर जाता और किसी खलनायक की दुष्टता उनकी समझ में आ जाती तो वे उसे गलियातीं, "नासपिटा, बेमुरौवत, ..." वगैरह। माया आन्टी ज़्यादा समय तो सेठानी से बतियाती ही रहतीं। फिल्म खत्म होती तो आन्टी हमसे पूछतीं, "इतनी जल्दी खत्म हो गई।" हम आन्टी को बताते कि तीन घण्टे पूरे हो गए हैं। टॉकीज़ से लौटते समय सेठानी आन्टी से कहतीं, "आज ठीक से नहीं देख पाई बहन। कल घूमते हुए फिर आ जाना।"

पी. मधुसूदनन

मैं इधर हूँ

खुशबू से और रंगों से
एक फूल बोला – मैं इधर हूँ

गानों से और लहरियों से
चिड़िया बोली – मैं इधर हूँ

ओ शिशिर! हवा को भेज दिया कर
बोला समन्दर – मैं इधर हूँ

चाँद तुम चाँदनी उड़ेलते रहो
जुगनू बोले – हम भी हैं
सागर पहाड़ नदियाँ सब कहते हैं
– हम इधर हैं

रंगों से, आवाज़ों से, लौ से
गंध, लहर सब
यही कहते हैं – मैं इधर हूँ

मेरे प्रिय साथी
तुम भी बोलो न ज़ोर से
– मैं इधर हूँ।

चित्रः कनक